वेदों में विज्ञान एवं सृष्टिउत्पत्ति

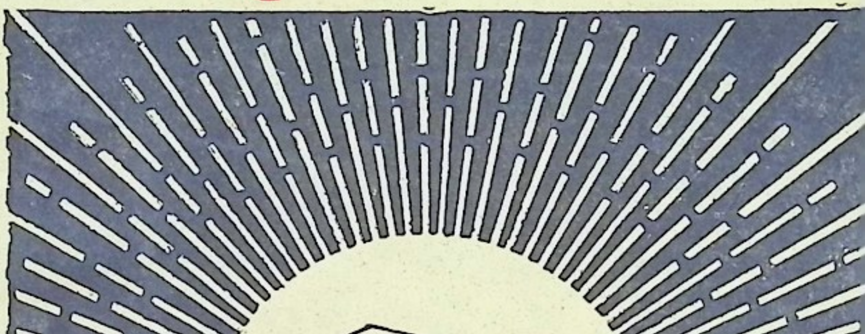

भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद् अलीगढ़

साप्ताहिक राष्ट्रपुरुष

अङ्क १६, १७, दि० २०, २७ नवम्बर १९६९

आर्थिक सहयोगी

श्री कृष्ण स्वरूप विद्यालंकार वानप्रस्थी

आर्यनगर (बदायूँ) निवासी श्री पं० कृष्ण स्वरूप जी विद्यालंकार गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक गीतामर्मज्ञ ओजस्वी वक्ता एवं कर्मठ-कार्यकर्त्ता हैं। आपने स्वतन्त्रता संग्राम में कृष्ण मन्दिर की कई बार यात्रा की है। आपने नगर की टाउन एरिया के चेयरमैन भी रहे हैं।

आपके पिता जी ने अपनी भूमि पर आर्य समाज का भवन बनाकर दान दिया इसी उदार हृदय से इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक के प्रकाशन में आपका आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। परिषद् आपका आभार प्रकट करती है।

❀ ओ३म् ❀

वेदों में विज्ञान एवं सृष्टिउत्पत्ति

(भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद् की सिद्धान्ताचार्य परीक्षा में स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

प्रस्तावना:-

आचार्य मित्रसेन

ऐम० ए० (संस्कृत हिन्दी), सिद्धान्तालंकार, साहित्यरत्न

लेखक:-

डा० विष्णु कान्त वर्मा

ऐम० ऐस-सी०, डी० फिल्०, सिद्धान्ताचार्य

साप्ताहिक राष्ट्रपुरुष का मासिक विशेषांक

प्रकाशक:-

भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद्

अचल मार्ग, अलीगढ़ । (उ० प्र०)

सन् १९६९ मूल्य ७५ पै०

आचार्य मित्रसेन ऐम०ए०, सिद्धान्तालंकार
के संरक्षण-निर्देशन में
प्रकाशित

विश्व के मानव-मात्र
के मन-मन्दिर पर 'वेद-ज्ञान'
की पुनीत पताका फहराने के लिए
संकल्प बद्ध
आर्यों की वैदिक भावनाओं का
प्रतिनिधि

भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद् का मुख-पत्र

"राष्ट्रपुरुष"

साप्ताहिक

अचल मार्ग, अलीगढ़

सम्पादिका—
विजय लक्ष्मी
ऐम०ए०, बी०ऐड०, सिद्धान्ताचार्य

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ७५ पै०
विदेश में १५ शिलिंग

मुद्रकः—
मा० वासुदेव सहाय आर्य
शिवाजी मुद्रणालय
अचल मार्ग, अलीगढ़।

स्वामित्वाधिकारी भा० वै० सि० प० अ०, प्रकाशक, मुद्रक—
श्री जगन्नाथशास्त्री ऐम. ए. के लिए शिवाजीमुद्रणालय, अलीगढ़।

समर्पण

वैदिक साहित्य

के

समस्त मननशील एवं अन्वेषक जिज्ञासुओं को
जो वेदमंत्रों के रहस्य, गंभीर और
गूढ़ार्थों के विवेचन के लिए
आतुर और योग्य-
अधिकारी हैं।

डा० विष्णु कान्त वर्मा

प्रस्तावना

धर्म और विज्ञान का अभिन्न संबंध है। सृष्टि के शाश्वत, प्राकृत नियमों को विज्ञान और उन नियमों के अनुरूप मानव समाज को समुन्नत एवं समृद्ध करने हेतु करणीय कर्मों को धर्म कहते हैं। अतः धर्मशास्त्र विज्ञान-विरोधी नहीं हो सकता। अमुक शास्त्र धर्मशास्त्र की संज्ञा का अधिकारी है अथवा नहीं इसकी कसौटी भी यह है कि वह विज्ञान-विरोधी है अथवा नहीं। अतः सत्य का ही नाम विज्ञान है और सत्य आचरण को धारण करने का नाम धर्म है। महाभारत शान्ति पर्व में कहा है "नहि सत्यात् परो धर्मः" सत्य से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है। इसीलिये उपनिषद् ने परमात्मा का वर्णन करते समय कहा है "तत् सत्यस्य परमं निधानम्" वह परमात्मा सत्य (विज्ञान) का सबसे बड़ा आश्रय है वह सबसे बड़ा वैज्ञानिक है।

वर्तमान समय विज्ञान के उत्कर्ष का है। अतः विज्ञान (सत्य)-विरोधी मतमतान्तर अपने आप ध्वस्त हो जावेंगे। एक महान् विचारक ने कहा है "A religion that ignores science commits suicide." वह धर्म जो विज्ञान की अवहेलना करता है आत्म-हत्या करता है। वेद सबसे प्राचीन धर्म ग्रन्थ है। वेदों में विज्ञान बीज रूप से है, ऐसा महर्षि दयानन्द का मत है। पाश्चात्य विद्वान् भी ऐसा ही मत रखते हैं। कुछ विचारकों के मत उद्धरित करना विषयानुकूल होगा। एक फ्रैंच विद्वान् ने कहा है "The Hindu revelation (Veda) is of all revelations the only one whose ideas are in perfect harmony with modern science." (Luis Jacoilot in his book The Bible in India) अर्थात् सभी ईश्वरीय ग्रन्थ माने जाने वाले ग्रन्थों में वेद ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसके विचार आधुनिक विज्ञान से पूर्णतया सामंजस्य रखते हुए मेल खाते हैं। इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान् डब्ल्यू.डी. ब्राउन ने कहा है "The Vedic religion recognises only one God. It is a thoroughly scientific religion

where religion and seience meet hand in hand." (Superiority of Vedic religion.) अर्थात् वैदिक धर्म की पृष्ठभूमि पूर्णतः वैज्ञानिक है जिस पर धर्म और विज्ञान अविरोधी हैं। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं "Vedas are eternal and consequently perfect and infullible." अर्थात् वेद शाश्वत् हैं इस कारण पूर्ण और त्रुटि-रहित हैं।

किन्तु कुछ मध्यकालीन भारतीय विद्वानों ने वेदों के विषय में भ्रांतिपूर्ण ग्रन्थ रच डाले। यह उनके पांडित्य की कमी का परिचायक है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है वेदों में बुद्धि-विपरीत कोई वात नहीं है। महर्षि कणाद का यह वाक्य नितान्त सत्य है कि "बुद्धि पूर्वो वाक्य कृति वेदे" ऐसे अत्युत्तम ग्रन्थ में विज्ञान तत्व यत्र तत्र पाया जाता है। वेद के विज्ञान सम्बन्धी कुछ स्थलों पर इस ग्रन्थ में विचार किया गया है। इसके लेखक डा० विष्णुकांत वर्मा गम्भीर विचारक, सुविज्ञ एवं लगन शील जिज्ञासु हैं। उन्होंने परिषद् की सिद्धान्ताचार्य परीक्षा के शोध प्रबन्ध में यह ग्रन्थ लिखा था। यह पाठकों के जीवन में महत्वपूर्ण सिद्ध होगा, इसलिए इसका प्रकाशन किया जा रहा है। वेदों में इतना ही विज्ञान नहीं है; इसमें तो केवल गागर में सागर भरा है। वेद रत्नाकर हैं। मनन मन्थन कीजिए और रत्नमंजूषा पाइए। आशा है यह लघु ग्रन्थ शिक्षित वर्ग को वेदों के प्रति आकर्षित करने में सहायक होगा और वे इनके महत्व को समझेंगे। तभी लेखक का श्रम सफल होगा। हमारा प्रयास प्रचार का है, आर्थिक लाभ का नहीं। फिर भी कुछ लाभ होने पर उदार लेखक ने उसे परिषद् को ही भेंट कर दिया है।

परीक्षा कार्यालयः-
भारतवर्षीय वैदिकसिद्धांत परिषद्
सेवा-सदन, कटरा, अलीगढ़
दि० २-१०-६६

आचार्य मित्रसेन
ऐम०ए० (संस्कृत, हिन्दी
सिद्धांतालङ्कार, साहित्यरत्न

वेदों में शक्ति-परिचय एवं नक्षत्रों का वर्गीकरण
(Classification of energy and heavenly bodies)

वेद का विषय प्रधानतया परमैश्वर्यवान् ईश्वर प्रार्थना, उसकी महिमा का वर्णन, आध्यात्म सम्बन्धी विषयों का विवेचन तथा मानवमात्र के कल्याण के लिए उपदेश देना है किन्तु बीजरूप से अन्य विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। वेदों के किसी किसी पूरे मंत्र में विज्ञान तत्व ही है किन्तु किसी किसी मंत्र के एक अंश में विज्ञान तत्त्व है तो दूसरे अंश में ईश्वर महिमा। इसका कारण यह है कि विज्ञान तत्त्व का समावेश भी ईश्वर महिमा को पूर्ण रूप से निखारने के लिए ही किया गया है। इस प्रकार इन मन्त्रों का कार्य दुहरा है।

इस लेख में शक्ति तथा ज्योतिपिण्डों (heavenly bodies) के विषय में वेदों में क्या कहा गया है, इस पर प्रकाश डाला जायगा। इस अभिप्राय से हम ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १०२ के ८वें मन्त्र पर विचार करेंगे। मन्त्र इस प्रकार है--

त्रिविष्टधातु प्रतिमानमोजसस्ति स्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथा शत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि॥

हे (ओजसः) महान् तेजस्वी परमात्मन् तू (त्रिविष्ट=त्रि-इष्ट धातु) तीन प्रकार की इष्ट अर्थात् सर्वोच्च प्राप्तव्य या ज्ञातव्य अर्थात् जिसके परे ज्ञातव्य कुछ न हो अर्थात् मूलभूत तत्त्व सत् रज् तम् से समस्त सृष्टि को नापता है। जैसे नाप या तौल की इकाई के परिमाण में ही वस्तुओं की लम्बाई या भार व्यक्त किया जाता है वैसे ही सारा दृश्य जगत् इन तीन मूलभूत तत्त्वों द्वारा नापा या रचा गया है। ये मूलभूत तत्व रचना की इकाई हैं। (त्रिस्रः भूमीः प्रतिमानम्) तीन प्रकार के लोकों को रचने वाला। आकाश में स्थित

लोक तीन प्रकार के हैं। प्रथम वे हैं जो स्वप्रकाशित हैं जैसे सूर्य। इन्हें नक्षत्र कहते हैं। इन पिण्डों का एक स्वयं का जगत् एवं मंडल होता है जैसे सूर्य का मण्डल सौर मण्डल के नाम से विख्यात है। द्वितीय प्रकार के वे पिण्ड हैं जो किसी नक्षत्र के चारों ओर दीर्घाकार (elliptic) मार्ग पर परिभ्रमण करते हैं और स्वप्रकाशित नहीं हैं इन्हें ग्रहों के नाम से पुकारा जाता है। सौर मण्डल में जैसे पृथ्वी, मंगल, बुध इत्यादि हैं। तीसरे प्रकार के वे पिण्ड हैं जो ग्रह के चारों ओर दीर्घाकार मार्ग पर भ्रमण करते हैं इन्हें उपग्रह कहते हैं जैसे चन्द्रमा।

उपरोक्त वर्णित तीन मूल तत्वों से (त्रीणि रोचना नृपते) तीन प्रकार के तेजों की रचना करता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है मंत्र के दूसरे चरण में ईश्वर महिमा वर्णित है। यथा—

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! तू (इदं विश्वम् भुवनम् अति विवक्षिथ) इस समस्त विश्व को उससे महान् होकर धारण कर रहा है इत्यादि।

निष्कर्षः—मंत्र में विश्व की महत्ता व विश्व रचना के महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए उसी पृष्ठभूमि से ईश्वर महिमा का विवेचन है। मंत्र में तीन वैज्ञानिक तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम सृष्टि रचना तीन मूलभूत तत्वों से हुई है। द्वितीय लोक तीन प्रकार के हैं और तृतीय शक्ति तीन तरह के रूपों में है। ये तीन रूप हैं ताप, प्रकाश और विद्युत् (Heat. Light and Electricity.)।

इस विषय की पुष्टि हेतु कुछ और प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं।

त्रीणि ज्योतीँषि सचते स षोडशी (यजु०अ०८।मं०३६) परमात्मा ने तीन ज्योतियों (energies) अग्नि, प्रकाश, विद्युत् को रच के संयुक्त किया।

ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा है।

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निम जीजतञ्छक्तिभी रोदसिप्राम।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपा॥
१०। ८८। १०

(स्तोमेन हि) यथार्थ गुणों अथवा वेद के द्वारा ही (देवासःअग्निम् अजीजनन्) विद्वानों ने शक्ति को जाना और प्रकट किया (शक्तिभिः रोदसि प्राम) इस शक्ति के विविध रूपों द्वारा भूमि और आकाश पूर्ण हो रहा है।

(तम् उ कं भुवे त्रेधा अकृण्वन्) उस शक्ति को सुखदायी बनाने के लिए विद्वानों ने निश्चय ही तीन रूपों में जाना है।

(कं भुवे) सुखदायी होने के लिये (सः विश्व रूपा औषधीःपचति) उस शक्ति ने नाना प्रकार के खनिज और विटेमिनों के रूपों में व्याप्त होकर नाना प्रकार की वनस्पतियों को उत्कृष्ट रूप दिया है।

उपरोक्त मंत्र में शक्ति के तीन प्रकार का निश्चयात्मक ज्ञान होने का उल्लेख है तथा वनस्पतियों में परमाणुओं का खनिज और विटामिनों के रूप में शक्ति धारण करने का भी संकेत है।

वेदों में शक्ति का वर्गीकरण और सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण

बल (Universal force of gravitation) का विवरण

पिछले लेख में यह दर्शाया गया है कि वेदों में शक्ति का तीन रूपों में होने का सुस्पष्ट विवेचन है। विज्ञान का सामान्य ज्ञान रखने वालों को विदित है कि शक्ति के तीन रूप ताप, प्रकाश और विद्युत हैं। उन्हें यह भी ज्ञात है कि विद्युत, चुम्बकीय शक्ति (magnetism) जिसे आकर्षण शक्ति भी कहते हैं, का ही रूपान्तर है।

यह सर्वमान्य है कि सर्वप्रथम सर आइजक न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण बल (force of gravitation) पर प्रकाश डाला। उन्होंने वह सूत्र भी बनाया जिसके द्वारा दो पिण्डों के बीच आकर्षण होता है (मात्रा का गुणनफल भागित दूरी का वर्ग)। इस कारण वे इस सिद्धान्त के जनक माने गये। इस लेख का अभिप्राय यह प्रमाणित करना है कि सर आइजक न्यूटन के बहुत पूर्व वैदिक युग में गुरुत्वाकर्षण बल के विषय में पूर्ण जानकारी थी।

यही नहीं वेदों में सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण बल (यूनिवर्सल फोर्स आफ ग्रेवीटेशन) की भी पूर्ण जानकारी थी, जिसका स्वरूप सर आइन्सटीन के पूर्व भी स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं था। सर आइन्सटीन ने इस सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण बल की कल्पना की और बताया कि इस बल के अस्तित्व के कारण ही प्रकाश किरण एक सरल रेखा नहीं बनाती वरन् एक वक्र मार्ग बनाती है। इस प्रकार यह प्रतीत होने वाली सरल रेखा एक अत्यन्त विशाल वृत्त का भाग है। इसी सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण बल के आधार पर सब ज्योतिपिण्ड (हेविनली बौडीज) स्थित हैं तथा अपनी २ कक्षा (आरबिटस्) में भ्रमण करते हैं।

अब हम इस सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण बल के विषय में वेदों में आये हुए विवरण पर प्रकाश डालेंगे। प्रथम स्थल है:—

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा।
सो अर्चिषा पृथ्वीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा॥

ऋग्वेद १०।८८।६

व्याख्या:—(यम् अग्निम् देवा: अजनयन्त) जिस तेज=इनर्जी को प्रकाशवान् लोक प्रकट करते हैं, यह सर्वमान्य है कि सूर्य कि भाँति प्रकाशवान् लोकों से दो रूपों में तेज प्राप्त होता है। एक ताप दूसरा प्रकाश।

(यस्मिन् विश्वानि भुवन्नानि आ जुह्वुः) जिस तेज=इनर्जी में समस्त लोक लोकान्तर आहुति (contribution) करते हैं अर्थात् जिस सार्वभौमिक वृहत् गुरुत्वाकर्षण बल के कारण सब लोक स्थित हैं और स्व स्व कक्षा में भ्रमण करते हैं, उस सार्वभौमिक वृहत् आकर्षण बल को बनाने में सभी लोकों का भाग (कान्ट्रीब्यूशन) है।

(सः ऋजूयमानः) वह तेज, आकर्षण बल सत्य नियमों का पालन करता हुआ (अर्चिसा) ईश्वर की वन्दना करता है। भाव यह है कि वृहत् आकर्षण बल के बनाने में प्रत्येक लोक का भाग सत्य नियम पर आधारित है अर्थात् प्रत्येक लोक का यह भाग उसकी सामर्थ्य= उसकी मात्रा (mass मास) के अनुपात में होता है। यह बल शक्ति ईश्वराधीन है किन्तु ईश्वर सत्य प्राकृतिक नियमों के अनुकूल ही उससे विविध सृष्टि करता है नियमों के विपरीत नहीं। (इमाम् द्याम् पृथ्वीम् महित्वा अनपत्) वह तेज इन प्रकाशित अप्रकाशित लोकों को अपने महित्व से भर रहा है। अर्थात् वह तेज विविध रुपों में समस्त आकाश और लोकों में व्याप्त है और सत्य प्राकृतिक नियमों के आधार पर उसका एक रूप (फार्म से) दूसरे रूप में रूपान्तर (कन्वरसन्) होता है।

अब उपरोक्त दिशा में कुछ गम्भीर एवं महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालने के अभिप्राय से वेद के एक दूसरे स्थल पर विचार करेंगे जो उपरोक्त व्याख्या का समर्थन करता है यथाः—तिस्रो द्यावा सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्। आणिं न रथ्यममृ-ताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्॥ ऋ० १। ३५। ६ (तिस्रः द्यावाः) तेज=इनर्जी के तीन प्रकार हैं। पहला ताप, दूसरा प्रकाश, तीसरा विद्युत् अथवा आकर्षण शक्ति (मेगनेटिज्म)। इनमें से (द्वा सवितुः उपस्थान) दो ताप और प्रकाश का आश्रम सूर्य है और (एका यमस्य भुवने विराषाट) एक शक्ति (यम नाम वायु) वायु

रूप होकर अर्थात् सूक्ष्म और अदृश्य होकर सम्पूर्ण विश्व में व्यापक है। अतएव यह स्पष्ट है कि शक्ति का एक रूप अति सूक्ष्म, अदृश्य और व्यापक माना गया है।

शक्ति का यह तीसरा रूप क्या है इसकी कल्पना मंत्र के दूसरे अंश पर विचार करने के अनन्तर ही की जा सकती है। (आणिं न रथ्यम् अमृताः अधितस्थुः) जिस प्रकार रथ के चक्र को आणियां (स्पोक्स) यथावत् स्थिति में रखती हैं उसी प्रकार यह शक्ति सब लोकों को यथावत् स्थित रखती है। अतः उपरोक्त विवरण से सुस्पष्ट है कि शक्ति का यह रूप और कुछ नहीं सार्वभौमिक आकर्षण बल अथवा चुम्बकीय बल ही है। यहाँ अमृताः नाम से लोकों को पुकारा गया है क्योंकि इनकी आयु अत्यन्त दीर्घकालीन है और ये प्रवाह से अनादि है। ऋग्वेद के एक मंत्र में लोकों को अदिति-अखंड-अर्थात् कभी नष्ट न होने वाला कहा है। यथा "अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम ..." ऋ० १ । ८६ । १०

अथर्व वेद में इन्हें स्पष्ट रूप से अमृत कहा है।

अब हम इस मंत्र में आये महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्यों पर विचार करेंगे।

रथ का चक्र वृत्ताकार होता है अतएव इस उपमा के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्मांड गोलाकार (स्फैरिकल) है।

द्वितीय यह कि रथ के चके में द्रव्य (मैटर) का अधिकांश भाग चके की परिधि (रिम) पर होता है अतएव इस उपमा से यह निष्कर्ष निकला कि सृष्टि का अधिकांश भाग ज्योतिर्पिण्ड गोलीय (स्फैरीकल) ब्रह्मांड के पृष्ठ पर स्थित है और मध्य भाग की मात्रा (मास) को छोड़ शेष भाग खोखला है।

तृतीय यह है कि आणियां (स्पोक्स) चक (रिम) को केन्द्र की ओर खींचे रहती हैं, किसी एक स्पोक के निकल जाने अथवा झुक

जाने से संतुलन बिगड़ जाता है वैसे ही यह समस्त ब्रह्मांड केन्द्रीय बल (सेन्ट्रीफ्यूगलफोर्स) पर स्थित है। वे बल रेखाएं गोलीय ब्रह्मांड के पृष्ठ भाग को केन्द्र से चक्र की आणियों की भाँति जोड़ती हैं। पूरा चक्र गतिवान् है। इस गति के कारण केन्द्रीय बल (सेन्ट्रीफ्यू-गल फोर्स) उद्भूत होता है जो समस्त संतुलन का आधार भूत होता है जैसे एक रस्सी में बंधे हुये पत्थर को बलपूर्वक घुमाने से एक संतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है।

उपरोक्त वर्णन को यदि हम सर एडिंगटन द्वारा दिये गये माडर्न कास्मालौजी के पृष्ठ १२६ पर दिये वर्णन से मिलावें तो पता चलेगा कि वेद में दिया हुआ विवरण कितना आधुनिक और वैज्ञानिक सत्यों पर आधारित है।

वेदों में सौर्यमंडल के नक्षत्रों का सन्तुलन और दीर्घाकार भ्रमण का वर्णन

पूर्व लेखों में वेदों में शक्ति (energy) का विविध रूपों में होने और ब्रह्माण्ड (univer se) के गोलाकार (spherical) होने तथा सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण बल (universal force of gnavitat-ion) का विवरण होने पर लिखा जा चुका है।

वर्तमान लेख में सौर्यमंडल के सन्तुलन विषय पर तथा ग्रहों के अपनी कक्षा में भ्रमण (rotation on ane's orbit) एवं अपनी धुरी पर घूमने (revoltxion on one's axis) के विषय में वेदों में आये विवरण पर प्रकाश डाला जायगा।

प्रथम विचारणीय स्थल है :

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः॥
ऋ० १०।८५।१

पद का अन्वय और व्याख्या:—
(सत्येन उत् तभिता भूमि:) सत्य के कारण ही पृथ्वी ऊपर थमी है जैसे (सूर्येण उत् तभिता द्यौ:) प्रकाश का आधार सूर्य है। इस द्वितीय पद से स्पष्ट है कि मंत्र भावनात्मक संदर्भ में नहीं कहा गया वरन् वास्तविक (realistic) पृष्ठभूमि पर आधारित है; इसी कारण प्रकाश का सूर्य पर आधारित होने का परम सत्य उपमा के रूप में दिया गया है। अतः प्रथम पद में इस सत्य की घोषणा की गयी है कि पृथ्वी सत्य प्राकृतिक नियमों के अनुरूप ही अन्तरिक्ष में थमी है।

यह सत्य प्राकृतिक नियम वही है जिसे वैज्ञानिक भाषा में आकर्षण का नियम (law of attraction) कहते हैं। इस नियम के अनुसार दो पिन्डों के बीच आकर्षण बराबर है पिन्डों की मात्रा का गुणनफल भागित दोनों के बीच की दूरी का वर्ग। मंत्र में इसी सत्य प्राकृतिक नियम की ओर इंगित किया गता है।

(ऋतेन आदित्या) सत्य प्राकृतिक नियमों के आधार पर ही प्रत्येक सौर्यमंडल में सूर्य (सोम: अधिश्रित:) अपने आश्रित चन्द्रादि लोकों सहित (दिवि तिष्ठन्ति) आकाश में स्थित हैं। बहुवचन होने के कारण भाष्यकारों ने आदित्या: शब्द से बारह मास का ग्रहण किया है। सम्भवतः इसी कारण कि एक से अधिक सूर्य के होने की कल्पना वे न कर सके। मंत्र के उत्तर भाग को भी उन्होंने दो स्वतंत्र भागों में विभक्त कर दिया जो उचित प्रतीत नहीं होता। अतएव आदित्या: से १२ मास ग्रहण करने पर भी मंत्र के इस भाग का अर्थ इस प्रकार होना चाहिये यथा— "बारह मासों का अस्तित्व भी चन्द्र के पृथ्वी भ्रमण पर आश्रित सत्य नियमों पर आधारित है। विदित है कि चन्द्र द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा भी उसी (law of central forces) केन्द्रीय बल संबन्धी सत्य नियमों पर आधारित है।

यदि इस मंत्र के आगे का मंत्र देखा जाय जिसमें आदित्याः शब्द फिर से आया है तो उपरोक्त प्रथम अर्थ ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । अगला मंत्र है

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥

साधारण अर्थः—सोम के कारण ही सूर्य बलवान् है, सोम के कारण ही पृथ्वी महान है। सोम के सुरक्षित होने पर ही ये नक्षत्रगण स्थित हैं।

मंत्र में नक्षत्रविद्या सुस्पष्ट रूप से है अतएव सारा रहस्य सोम शब्द के वास्तविक अर्थ पर आधारित है। आदित्य अखण्ड ब्रह्मचारी को भी कहते हैं। ब्रह्मचारी वीर्यरक्षण से ही कान्तिवान्, शक्तिवान् एवं दूसरों को अपने तेज से आकर्षित करने वाला होता है। नक्षत्र विद्या के संदर्भ में सोम का अर्थ हुआ वह तत्व जिसके कारण एक पिन्ड दूसरे पिन्ड को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ होता है। क्योंकि आकर्षण मात्रा के अनुपात में होता है इस कारण सोम का अर्थ हुआ (mass) भौतिक तत्व की मात्रा जिसके कम होने पर कम और अधिक होने पर पिण्ड अधिक आकर्षण करता है।

अब शतपथ ब्राह्मण द्वारा की हुई सोम की परिभाषा पर विचार करिये, यथा "स्वा वै मे आत्मेति सोमः"।

यहाँ जड़ देह को चेतन तेज से प्रकाशित करने वाली सारभूत आत्मा को सोम कहा है। इसी भाव को नक्षत्रविद्या पर लागू करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि सोम से अभिप्राय है ज्योतिर्पिन्ड की सारभूत शक्ति से, स्व शक्ति से एवं स्वध्या से जो पिन्ड में निहित भौतिक तत्व (matter) पर आश्रित है और जिसे विज्ञान की भाषा में मात्र (mass) कहते हैं। एतदर्थ नक्षत्रविद्या के सन्दर्भ में सोम

शब्द का अर्थ हुआ पिण्ड में निहित भौतिक तत्व की मात्रा अथवा मात्रा पर आधारित आकर्षण शक्ति। अब मंत्र का भाव इस प्रकार हो गया:-

"अपनी विशाल भौतिक तत्व की मात्रा (mass of matter) एवं आकर्षण शक्ति के कारण ही सूर्य शक्ति का केन्द्र है और प्रतिक्षण ताप और प्रकाश के रूप में शक्ति (energy) का वितरण करता है। अपनी विशाल मात्रा के कारण ही पृथ्वी बड़ी २ वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती एवं धारण करती है और इसी कारण महान है। (अथ:) और (एषां नक्षत्राणाम् सोम आहितः उपस्थे) ये नक्षत्रगण भी अपने पिण्ड में निहित आकर्षण शक्ति की आधारभूत भौतिक तत्व की मात्रा के अपने पिण्ड में सुरक्षित होने के कारण ही स्थित हैं।

निष्कर्ष:-मंत्र में चार बातें निश्चयपूर्वक कही गयी हैं।

प्रथम:-आकर्षण (attraction) पिण्ड में निहित भौतिक तत्व की मात्रा के प्रमाण (quantity) पर निर्भर है। द्वितीय यह कि समस्त ज्योतिर्पिण्ड परस्पर आकर्षण के कारण स्थित हैं। अपनी मात्रा के कारण ही सूर्य आकर्षण का केन्द्र है। अपनी विशाल मात्रा के कारण ही पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि दोनों मंत्रों का अर्थ इस प्रकार किया जाय कि उनका परस्पर संबंध विच्छेद हो जावे। अतएव प्रथम मंत्र में अनेको सौर्य मंडल की कल्पना है (आदित्याः के बहुवचन होने के कारण) ऐसा प्रतीत होता है।

महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती ने आकर्षण विषय पर ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में कुछ महत्वपूर्ण मंत्रों को उद्धृत करके अत्यन्त विशद् व्याख्या की है। यद्यपि स्वामी जी विज्ञान के ज्ञाता न थे

तदपि जहाँ भी वैज्ञानिक सिद्धान्त वेद मंत्रों में आये हैं स्वामी जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से विषय का निर्वाह किया है। अतएव स्वामी जी के भाष्य का अंश उल्लेखनीय है।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका (प्रथम संस्करण) के पृष्ठ १८३ पर महर्षि ने ऋग्वेद के ३ मंत्रों पर विचार किया है। तीनों मंत्रों की द्वितीय पंक्ति एक ही है यथा

आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे।

भाष्यः-तदनन्तरं दिवेदिवे प्रतिदिनं प्रतिक्षणं च ते तव गुणाः प्रकाशाकर्षणादयो विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि सर्वान् लोकानाकर्षणेन येमिरे नियमेन धारयन्ति। अतः कारणात्सर्वे लोकाः स्वां स्वां कक्षां विहायेतस्ततो नैव विचलन्तीति। दया० भाषा भाष्यः-

हे इन्द्र परमेश्वर आपने अपने अनन्त बल पराक्रम गुणों से भौतिक तत्व से उद्भूत प्रकाश और आकर्षण द्वारा समस्त लोकों को धारण करते हुए नियमों में रखा है। इस कारण से सब लोक अपनी २ कक्षा और स्थान से इधर उधर चलायमान नहीं होते।

दूसरे मंत्र का भाष्य करते हुए स्वामी जी इसी पंक्ति के भाष्य में लिखते हैं

"अतएव सर्वाणि भुवनानि यथाकक्षं भ्रमन्ति वसन्ति च"

तीसरे मंत्र के भाष्य में स्वामी जी लिखते हैं

"तदनन्तरं विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि सूर्य्यादयो लोका अपि येमिरे तदाकर्षण नियमेनैव स्थिराणि सन्ति।"

इन मंत्रों के भाष्य में स्वामी जी महाराज ने स्पष्ट रुप से दर्शाया है कि समस्त लोकों के स्व स्व कक्षा (on one's own orbit) में नियमपूर्वक भ्रमण (revolution) करने और अपनी धुरी पर घूमने (rotating on its own axis) में लोकों के मध्य आकर्षण ही सन्तुलन का मुख्याधार है ऐसा मंत्रों का आशय है।

अब लोकों के सन्तुलन विषय पर कुछ और प्रकाश डालेंगे। इस विषय पर सर्व प्रथम संदर्भ ऋग्वेद के प्रथम मंडल में आता है । यथा:—

अजो न द्यां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।

६७ । ३

व्याख्या:—(अजः) सूर्य (न) जिस प्रकार (द्यां पृथ्वीं) प्रजा से बसी पृथ्वी को आकर्षण द्वारा धारण करता है उसी प्रकार (अजः) अजन्मा परमेश्वर (द्यां तस्तम्भ) आकाश में स्थित लोकों को (सत्यैः मन्त्रेभिः) सत्य प्राकृतिक नियमों द्वारा धारण करता है अर्थात् आकर्षण द्वारा ही समस्त नक्षत्र मंडल स्थित है ।

अब पृथ्वी के भ्रमण एवं उत्पत्ति विषय पर प्रकाश डालेंगे। मंत्र की व्याख्या स्वामी दयानन्द जी कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका (प्रथम संस्करण पृष्ठ १७६) में दिये हुए भाष्य के गम्भीर मनन पर आधारित है । मंत्र है:—

आयं गौः पृश्निरक्रमीद सदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ऋ० १०।१८६।१, यजु० अ० ३ । मं० ६॥

मंत्र में कुछ महत्वपूर्ण शब्द हैं यथा गौः, पृश्निः और स्वः, उनके अर्थ पर ही वैज्ञानिक भाव आधारित है। इन शब्दों के वास्तविक अर्थ को प्रकाश में लाने के लिये महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों का उल्लेख करना आवश्यक है । यथाः

गौः-गौरिति पृथिव्या नामधेयं, यद् दूरं गता भवति, यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति । निरु० अ० २ । खं० ५

भाषाः-गौः पृथ्वी का नाम है जो दूर जाती है और जिस पर प्राणी चलते हैं ।

गच्छति प्रतिक्षणं भ्रमति या सा गौः पृथ्वी । दया०

पृश्निः-पृश्निरित्यन्तरिक्षस्य नामोक्तं निरुक्ते ।

भाषा:-पृश्निः निरुक्तानुसार अन्तरिक्ष (interstellar space) को कहते हैं।

स्वः-स्वारादित्यो भवति। निरु० अ० २। खं० १४

भाषा:-स्वः सूर्य को कहते हैं।

पद अन्वय और व्याख्या:-

(आयं) यह (गौः) गमनशील लोक पृथ्वी अन्य ग्रह इत्यादि (पृश्निः) अन्तरिक्ष (interstellar space) में (आ अक्रमीत्) भ्रमण कर रहा है।

(पुरः) उसका पिण्ड (मातरम्) आकाश में बनी कक्षा (orbit) में (असदत्) सदैव रहता है जैसे माता की गोद में शिशु सदैव रहता है। (च) और (पितरं) पिता के तुल्य (पुरः) पूर्व काल में अपने पिण्ड से इस पिण्ड को जन्म देने वाले (स्वः) अपनी ओर आकर्षण में बाँधने वाले केन्द्र में स्थित अपने से बड़े सूर्य लोक की (प्र-यन्) परिक्रमा करता है।

निष्कर्ष:-मंत्र में चार वैज्ञानिक सत्यों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रथम यह कि पृथ्वी एवं उसके समान अन्य ग्रहों की उत्पत्ति केन्द्रीय लोक सूर्य से हुई है।

द्वितीय यह कि प्रत्येक ग्रह अपनी २ कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करता है।

सूर्य ग्रहों से कई गुना बड़ा है, और आकर्षण का केन्द्र है।

इतना सुन्दर और स्पष्ट वर्णन क्या वैज्ञानिकों ने भी प्रथम प्रयास में किया है ! किन्तु मंत्र का वैज्ञानिक भाव महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती के भाष्य के पूर्व विदित न था।

वैदिक साहित्य में दिक् (space), काल (time) और अनन्त (infinity)

बीसवीं सदी के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक सर आइन्सटीन का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त सापेक्षवाद (relativity) था जिसने दुनियां के विद्वानों को चकित कर दिया था। दिक् (space) का तीन याम वाला (three dimensional) होना विदित था। सर आइन्सटीन ने समय (time) को चतुर्थ याम (dimension) निरूपित किया। उनकी खोज के पश्चात् यह विदित हुआ कि गति (motion) निरपेक्ष (absolute) नहीं है। एक पिण्ड (body) यदि चलायमान कहा जाता है तो किसी दूसरे पिण्ड की अपेक्षा से ही, अन्यथा नहीं।

दिक् (space) और काल (time) के विचार (conceptions) आर्य हिन्दू दार्शनिक साहित्य में अति प्राचीन हैं। वैदिक काल से ही आर्य हिन्दू ऋषि लोग इन दोनों तत्वों से पूर्णतयः परिचित थे। वैदिक साहित्य में केवल ईश्वर को अचल कहा है और ईश्वर के अतिरिक्त सभी तत्वों को चलायमान माना है। इस प्रकार हिन्दू दार्शनिक मान्यता के अनुसार प्रत्येक वस्तु निराकार, सर्वव्यापक, अचल ईश्वर की अपेक्षा से चलायमान है। सर्वव्यापी तत्व ही अचल हो सकता है; जो सब जगह मौजूद है उसके लिये आने-जाने की संज्ञा अर्थहीन है। यथा:

अनेजदेकं मनसो जवीयो। यजु० ४०। ४

वह अद्वितीय परमात्मा अचल है किन्तु मन से भी अधिक गतिवान् है, क्योंकि जहां कोई जाने का विचार करे वहां व्यापक होने के कारण पहले ही से वर्तमान है। अगले मंत्र में फिर कहा है:-

तदेजति तन्नेजति। यजु० ४०। ५

वह समस्त ब्रह्माण्ड को चलाता है, वह अचल है।

उपनिषद् में परमात्मा को ध्रुव कहा है। यथा:

"अनाद्यनन्तं महतः परम् ध्रुवं" कठ०

वह परमात्मा आदि अन्त रहित और ध्रुव अर्थात् अचल है। विरजः पर आकाशात् अज आत्मा महाध्रुवः। श० कां १४।अ०७।२३ वह परमात्मा महाध्रुव अर्थात् पूर्णतया निश्चल है।

इस प्रकार निष्कर्ष यह निकला कि ईश्वर को छोड़कर शेष सभी पदार्थ ईश्वर की अपेक्षा से गतिवान् हैं। पृथ्वी सूर्य की अपेक्षा से सौर्यमंडल महासौर्यमंडल (nebula) की अपेक्षा से, और महासौर्य-मंडल भी महासौर्यमंडल (great nebula) की अपेक्षा से गतिवान् है। इस प्रकार दिक् (space) स्वयं गतिवान् है गति ही नियम है स्थिरता नहीं।

वैदिक साहित्य में अनादि=आदि रहित (beginningless) और अनन्त=अन्त रहित (endless) तत्व की कल्पना देखकर यह विदित होता है कि वैदिक युग में मानसिक विकास अत्यन्त उच्च अवस्था को पहुँच चुका था। गणित शास्त्र की दृष्टि से अनादि का अर्थ है वह रेखा जो एक दिशा में अनन्त हो, किन्तु अनन्त (infinity) से चलकर सान्त भाग में(finite part of the plane) पदार्पण करे (single infinity) अनन्त का अर्थ है वह रेखा जो आदि वाली (with beginning) हो अर्थात् शून्य विन्दु (origin) से आरम्भ होकर किसी दिशा में समाप्त हुए विना (without terminating) बढ़ती जावे इसे एक दिशा में अनन्त (single infinity) कहते हैं। अनादि अनन्त वह रेखा है जो दोनों दिशा में अन्त रहित है (double infinity)।

वैदिक साहित्य में उपरोक्त वैज्ञानिक आधार पर ही अनादि, अनन्त की कल्पना की गई है। हिन्दू दार्शनिकों ने अनादि अनन्त का प्रयोग दो संदर्भों में किया है, एक काल (time) की अपेक्षा से तत्व के अस्तित्व पर विचार करते समय और दूसरे दिक्=फैलाव

की अपेक्षा से तत्व के फैलाव=दिक् घेरने के विषय में विचार करते समय।

काल की गणना में अनादि अनन्त तत्व वह है जो कभी भी बना नहीं और जिसका अंत कभी भी न होगा। वेदों में ईश्वर के विषय में ऐसी ही मान्यता है। यथा:

महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम्। ऋ०१०।५५।२

(येन भूतम् जनय येन भव्यम् जनय) जो भूत और भविष्य दोनों को उत्पन्न करता है अर्थात् जो इनसे स्वयं परे है।

पुरुष एवेदं सर्वम यद्भूतम यच्चभाव्यम्। यजु० ३१।२

पुरुष समस्त भूत और भविष्य को व्याप रहा है अर्थात् वह कालातीत है इसी प्रकार कहा है "अजस्य नाभावध्येकमर्पितं" ऋ० १०।८२।६

वह अज=अजन्मा है आदि रहित है। वह

"परिभू स्वयंभू:"। यजु० ४०। ८

(स्वयंभू:) स्वसामर्थ्येन वर्तमानो ऽस्ति, अपनी स्व शक्ति से वर्तमान (self made) निमित्तोपादान कारण रहित:, जो किसी प्रकार का कार्य (effect) नहीं है उसके बनाने में कोई कारण नहीं है (without efficient or matesial cause)।

इसी प्रकार ईश्वर अविनाशी और अनन्त कहा गया है।

"अच्युतम" ऋ० १०। १००। ३ वह अविनाशी है अर्थात् अन्त रहित है।

"अनाद्यनन्तम्" कठोपनिषद्

वह अनादि और अनन्त है।

अनादि अनन्त का दूसरा प्रयोग वैदिक साहित्य में दिक् (space) घेरने की दृष्टि से किया गया है। हिन्दू दार्शनिकों की दृष्टि में परमात्मा ही एक ऐसा तत्व है जो आकाशवत् व्यापक होता हुआ आकाश से भी महान् है जो आकाश की परिधि है आकाश

(space) की सीमा है। यथा :

परमं व्योम। यजु० अ० २३। मं० ६२, ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
ऋ० १। १६४। ३६

त्वमस्य पारे रजसो व्योमन्:। ऋ० १। ५२। १२

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्। ऋ० १०। १२६। ७

"स भूमिम् सर्वतो वृत्वात्" यजु० अ० ३१। १

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। यजु० ३१। १३

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म परमे व्योमन्" तैत्तिरीयोपनिषद्

इस प्रकार दिक् घेरने=फैलाव से परमात्मा अनादि अनन्त कहा गया है अर्थात् हर दिशा में आदि अन्त रहित (doubly infinite) कहा गया है।

प्रश्न है कि क्या अनन्त की उपरोक्त दार्शनिक कल्पना गणित शास्त्र की कल्पना के अनुरूप है। गणित शास्त्र के अनुसार अनन्त राशि में से अनन्त राशि घटाने पर शेष अनन्त बचता है (सदा नहीं)। वेद के एक मंत्र में अनन्त (infinity) की इसी प्रकार की विशेषता का वर्णन है। यथा :

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। यजु० ४०। १६

वह भी पूर्ण=अनन्त है यह भी अनन्त है। उस अनन्त में से इस अनन्त को घटा देने पर जो शेष बचता है वह भी अनन्त है। विदित है कि एक सान्त (finite) राशि में से दूसरी सान्त (finite) राशि घटा देने पर प्रथम राशि ज्यों की त्यों नहीं बच सकती जब तक कि द्वितीय राशि शून्य न हो। यह विशेषता केवल अनन्त राशियों में ही घट सकती है सान्त राशियों में नहीं।

अब हम सर आइन्सटीन द्वारा प्रस्तुत समय (time) के अस्तित्व के विषय में एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करेंगे। सर

आइन्सटीन कहते हैं कि समय का अस्तित्व घटनाओं के क्रम के माध्यम से प्रत्यक्ष होता और अनुभव में आता है, घटना रहित होने पर समय का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।

ठीक यही विचार महर्षि दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश में तत्वों की मीमांसा करते समय व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि काल (time) प्रवाह से अनादि (time is beginningless due to flow of events) है। काल का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है काल का अस्तित्व प्रलय और सृष्टि के घटना चक्र के कारण है इसी कारण उसे प्रवाह से अनादि अनन्त कहते हैं। महर्षि दयानंद द्वारा व्यक्त विचार हिन्दू दार्शनिकों का परम्परागत विचार है। जैसे नदी का जल प्रवाह प्रति क्षण बदलता है, प्रति क्षण नवीन जल पूर्व जल का स्थान लेता है किन्तु फिर भी नदी का अस्तित्व स्थायी प्रतीत होता है, वैसे ही काल प्रति क्षण नष्ट होने पर भी घटनाचक्र के क्रम के अस्तित्व के कारण अन्तहीन प्रतीत होता है। यदि घटनाचक्र समाप्त हो जावे तो काल के अस्तित्व का कोई तात्पर्य न रह जावे, यह भाव वेद मंत्रों में व्यक्त किया गया है। यथा :

न मृत्युरांसीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
अनीदवातं स्वध्या तदेकं तस्माद्धन्यन्न परः किंचनास॥

ऋ० १०। १२६। २

उस समय न जीवन की सत्ता थी न उसका लोप था अर्थात् जीवात्माओं की सत्ता थी किन्तु व्यक्त न थी। उस समय न रात्रि थी न दिन था। केवल एक (अनीत्) प्राणरूप=बीजरूप तत्व था किन्तु वह (अवातम्) स्थूल वायु रूप न था, वह अत्यन्त सूक्ष्म अव्यक्त रूप था। (तत् एकम स्वध्या) वह तत्व अपनी निज की शक्ति से जगत् को धारण करने की शक्ति से युक्त (बीजरूप) था, वह भौतिक पदार्थ का अन्ततम (ultimate) भाग (particle) था। (तस्मात् अन्यत्

किंचन परः न आस) उससे भिन्न और सूक्ष्म कोई पदार्थ न था (it was the ultimate reality into which matter can subdivide)। अगले मंत्र में कहा है

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।

ऋ० १०। १२६। ३

(अग्रे) सृष्टि के पूर्व (तमः आसीत्) अंधकार व्याप्त था, वह अंधकार साधारण अंधकार की भांति नहीं था। वह (तमसा गूढ़म्) अंधकार अव्यक्त रूप था रहस्यमय था। (अप्रकेतं) इन्द्रियों की ज्ञान शक्ति के परे था अविज्ञेय था, जो विचार में न आ सके ऐसा था। वह (सलिलं) व्यापक तत्व गतिवान् कुहरे की नाईं (सर्वम् इदम् आ) इस समस्त अवकाश को व्यापे था।

एतदर्थ उस समय काल का अस्तित्व नहीं था क्योंकि प्रकृति मूल रूप में थी उस समय की स्थिति घटना रहित थी। फिर परमात्मा ने

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसो ऽध्यजायत ।

ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ ऋ० १०। १९०। १

व्याख्याः—

ऋत्=काल और सत्यं=भौतिक दृश्य जगत को धारण करने वाले सत्य परमाणुओं को (अभीद्धात् तपसः) सब ओर से अपने ज्ञानमय तप द्वारा (अधि अजायत्) प्रकट किया। (ततः) उसी ज्ञानमय तप से (अर्णवः समुद्रः) जल कण की नाईं आकाश में व्यापक परमाणु हुए। फिर

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।

अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥ ऋ० १०। १९०। २

व्याख्याः-(अर्णवात् समुद्राद् अधि) समुद्र की तरह परमाणुओं से व्यापक आकाश से संवत्सर=कल्प=सृष्टि रचना काल उत्पन्न हुआ। यहां मंत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहस्यमय दार्शनिक एवं

वैज्ञानिक भाव निहित है। वह भाव यह है कि परमाणु की रचना के विना काल की गणना नहीं हो सकती। अभी तक प्रकृति अपने मूल रूप में थी अर्थात् सत्, रज, तम की साम्यावस्था थी, इस कारण किसी घटना के घटित होने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, क्योंकि मूल कारण रूप प्रकृति घटना रहित है, एक रस है। घटना (incident) आरम्भ होती है कारण से कार्य होने के पश्चात्। कारण रूप प्रकृति का प्रथम कार्य परमाणु रचना है अतएव परमाणु की रचना के उपरान्त रज कण (electron) के केन्द्र (nucleus) के चारों ओर परिक्रमा (revolution) करने की घटना से काल की गणना आरम्भ हुई अर्थात् काल को नापने का पैमाना (scale) अस्तित्व में आया। काल स्वयं अस्तित्व में आया। (विश्वस्य मिषतः वशी) समस्त जीवों के स्वामी ने (अहः रात्राणि विदधत्) दिन अर्थात् सृष्टिकाल और रात्रि अर्थात् प्रलयकाल निश्चित किये। इस प्रकार मुख्य घटना चक्र चला और काल प्रवाहित हुआ, काल का जन्म हुआ। यह घटना चक्र पूर्व कल्प के अनुरूप था।

उपरोक्त व्याख्या से सुस्पष्ट है कि वेद मंत्रों में गम्भीर, रहस्यमय वैज्ञानिक सत्य निहित हैं किन्तु कालान्तर में उनके तात्पर्यों को ठीक से न समझ सकने के कारण अर्थ का अनर्थ किया जाता है जिससे वैज्ञानिक अभिप्राय लुप्तप्रायः हो जाता है।

सप्त लोक रहस्य एवं वेदों में परमाणु बनावट

पूर्व लेख में यह बताया जा चुका है कि वेदों में आया हुआ दिक् और काल का विवरण सर आइन्सटीन द्वारा प्रस्तुत इस युग की नवीनतम वैज्ञानिक विचारधारा के अनुरूप है। वेदों में स्थल २ पर सप्त लोकों का उल्लेख आया है। ये सप्त लोक क्या हैं इनका भूगोल (geography) क्या है इस विषय में किसी भी ग्रन्थ में कोई

विवरण नहीं पाया जाता। अस्तु, लेख के प्रथम भाग में इस रहस्य का उद्घाटन करना आवश्यक है। लेख के दूसरे भाग में परमाणु की बनावट पर वेदों में आये विवरण को प्रस्तुत किया जायगा।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार दृश्य जगत् पंच महाभूतों में विभक्त है। ये पंच महाभूत हैं पृथ्वी, जल, वायु (solid, liquid and gaseous states of matter), तेज (energy) और आकाश= पदार्थ का अत्यन्त सूक्ष्म अव्यक्त रूप जो किसी प्रकार के अनुभव का विषय नहीं है (all pervading invisible undetectable latent form of matter।

सर्व प्रथम आकाश तत्व के विषय में फैले हुए भ्रामक विचारों को दूर करना होगा। आकाश से विद्वान् अवकाश (space) का ग्रहण करते हैं जो कि त्रुटिपूर्ण है। साधारणतः आकाश का अर्थ अवकाश (space) ही होता है किन्तु तत्व मीमांसा के संदर्भ में आकाश का अर्थ अवकाश नहीं है। अवकाश का लक्षण है स्थान (space) प्रदान (provide) करना जो आयतन (volume) के रूप में नापा जाता है, किन्तु शास्त्रों में आकाश का लक्षण शब्द (sound) बताया है। विदित है कि शब्द लहरों (wave motion) द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है। अतः स्पष्ट है कि आकाश शून्य अवकाश खोल को नहीं उस भौतिक सत्तावान् तत्व को कहते हैं जिसका लक्षण (characteristic) है लहरें उत्पन्न (to originate wave motion) करना।

यह कहा जाता है कि वेदों का अर्थ करने वाले (interpretors) वेदों में किसी वैज्ञानिक घटना (phenomenon) को बता देते हैं। उन्हें इस विषय को ध्यान से हृदयंगम करना चाहिये कि वैदिक साहित्य में वर्णित सर्वव्यापी आकाश तत्व की कल्पना (conception) अत्यन्त प्राचीन एवं स्थायी सत्य सिद्ध हुई है। वैज्ञानिकों ने

प्रथम एक सर्वव्यापी तत्व ईथर (ether) की कल्पना की। कालान्तर में यह कल्पना गलत पाई गयी और अनुपयुक्त ठहरायी जाकर हटा दी (discarded) गयी। किन्तु वैदिक मीमांसा अटल है, ध्रुव है, अपरिवर्तनशील है। सन् १६२६ में ब्रिटेन के एक बड़े वैज्ञानिक प्रो० डायरेक (Dirac) ने एक सर्वव्यापी तत्व की घोषणा की जिसे ऐण्टी-पार्टिकिल्स (antiparticles or extra-ordinary electrons) के समुद्र के नाम से पुकारा गया। इस तत्व को डायरेक समुद्र (Dirac Ocean) नाम दिया गया। इन कणों में ऋणात्मक मात्रा (negative mass) है। यदि एक कण हट जाता है तो रिक्त स्थान=डायरेक समुद्र में छिद्र के। इस छिद्र में ऋणात्मक विद्युत् की अनुपस्थिति बराबर है धनात्मक मात्रा की इकाई और धनात्मक विद्युत् की इकाई के। इन कणों को ऐण्टी-इलेक्ट्रोन या positron कहते हैं।

(The Dirac Ocean is uniformly distributed on all sides and extends into infinity in all directions. The particles constituting the ocean have negative enertial mass. If one of the particles is absent leaving a hole in the ocean, this hole represents lack of negative charge and is equivalent to a positive charge and a positive mass. The holes in the Dirac Ocean behave as ordinary particles carrying a positive electron charge and a positive mass. These are known as anti-electrons or positrons.

प्रोफेसर डायरेक द्वारा प्रस्तुत विकल्प (theory) प्रायोगिक प्रमाणों के आधार पर वैज्ञानिक जगत् को मान्य है। अब पाठक वृन्द बतावें कि वैदिक विज्ञान स्थायी है अथवा भौतिक विज्ञान?

क्या विज्ञान ने भटककर अन्ततः वैदिक मत को ही नहीं अपनाया ?

अब प्रश्न रह गया इस डायरेक समुद्र के लक्षण को आकाश के लक्षण के अनुरूप बनाने का। आकाश का लक्षण लहर (wave motion) उत्पन्न करना है यह प्रथम बतलाया जा चुका है। विज्ञान से विदित है कि साधारण इलेक्ट्रोन जब डायरेक समुद्र के छिद्र, जिसे पाजीट्रोन (positron) कहते हैं, में गिरता है तो दोनों कण अस्तित्वहीन होकर गामा किरण उत्पन्न करते हैं (these particles disappear to give rise to y–radiation)।

अब इसका विवरण वेद में देखिये। यथा :

अपदे पादा प्रतिधातवे ऽकरूतापवक्ता हृदयाविधश्चित्।

ऋ० १।२४।८

वह परमात्मा (अपदे) निरापद आकाश के शून्य विन्दु से=डायरेक समुद्र के छिद्र से (पादा) भासमान् तत्व=शक्ति की नयी किरण (y–rays) को (प्रति धातवे, धातवे=गतिवान्, प्रतिधातवे =गतिवान् को परावर्तित करना जैसे ध्वनि की परवर्तित लहर प्रतिध्वनि) धातवे=गतिवान् इलेक्ट्रोन को, प्रतिधातवे=नष्ट कर उसी विन्दु से परावर्तन (reflection) की भाँति (गामा किरण को) चलाता है। वह ही परमात्मा (हृदयाविधः चित्) दूसरे के हृदय को कठोर वाणी से वेधने वाले व्यक्ति के हृदय रूप शून्य विन्दु में (अपवक्ता) निराकरण के लिये मौजूद है। वह सर्वव्यापी उसी शून्य हृदय विन्दु में कार्यरत सा प्रतीत होता है। वह कठोर विचार रूप उत्पन्न कर्म को फल में परिणित करता है जैसे वह उपरोक्त तुलना में गतिवान् इलेक्ट्रोन को डायरेक समुद्र के छिद्र से गामा किरण में परिणित कर देता है।

अब प्रश्न रह गया इस बात का कि आकाश से अवकाश (space) न ग्रहण कर एक सर्वव्यापी तत्व किस आधार पर ग्रहण

किया। इसके उत्तर में पाठकों को विदित हो कि वैशेषिक दर्शन में ६ तत्वों की गणना की गयी है, इनमें से जीवात्मा और मन को छोड़ शेष सात तत्वों को भौतिक जगत का कारण तत्व माना गया है। ये सात तत्व हैं पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश, दिक् और काल, यहाँ अवकाश (space) के लिये दिक् का प्रयोग पृथक् ही किया गया है। अतः आकाश अवकाश (space) से भिन्न किन्तु सर्वव्यापी सत्तावान् अव्यक्त तत्व है जैसा कि पूर्व वर्णन में बताया गया है। केवल सर्वव्यापकत्व गुण के आधार पर आकाश तत्व और अवकाश को साधारण अर्थों में एकार्थी कर दिया है किन्तु विशेष अर्थों में अर्थात् तत्व मीमांसा में दोनों पृथक् हैं। पाँच तत्वों का विवरण प्रत्येक दर्शन (हिन्दू षट् दर्शन) में दिया गया है किन्तु वैशेषिक दर्शन में दो विशेष तत्व दिक् (space) और काल (time) का वर्णन दिया जाने से यह दर्शन वैशेषिक दर्शन कहलाया। वेदों में जगत् के इन्हीं सप्त मूल आधारभूत कारण तत्वों को सप्त लोक, सप्त नदियां, सप्त ऐश्वर्य इत्यादि के नाम से पुकारा है। यथा :

अस्य श्रवो नद्यः सप्त विभ्रति द्यावा क्षामा पृथ्वी दर्शतं वापु।
अस्मे सूर्याचन्द्रसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम्॥
ऋ० १।१०२।२

(अस्य श्रवः) जिस परमात्मा के महान् सामर्थ्य को (सप्त नद्यः) सात प्रवाह रूप कारण तत्व (विभ्रति) धारण कर रहे हैं। (अस्य श्रवः द्यावा क्षामा पृथ्वी) जिसके यश को आकाश, सूर्य, पृथ्वी सब (वपुः) अपने स्वरूप में (विभ्रति) धारण कर रहे हैं (अस्य श्रवः अस्मे अभिचक्षे) जिसका महान् सामर्थ्य हमें प्रत्यक्ष दिखाने व (श्रद्धे) उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने (सूर्य चन्द्रमसा वितर्तुरम् चरतः) सूर्य चन्द्र नाना प्रकार गति करते हैं।

कुछ विद्वानों ने सप्त नद्यः से सात नदियों का ग्रहण करके

वैदिक काल में आर्यावर्त की सीमा पंजाब और उत्तर प्रदेश निर्धारित की है। यह स्पष्ट त्रुटि है क्योंकि जहाँ आकाश, सूर्य, पृथ्वी की बात हो रही हो वहां नदियों के संदर्भ की क्या तुक है? इसी प्रकार अन्यत्र कहा है:

"सप्तधामानि परियत्" ऋ० १०।१२२।३

वह सात लोकों को व्यापता है।

"ईलते सप्त वाजिनम्" ऋ० १०।१२२।४

सात ऐश्वर्य के स्वामी की उपासना करते हैं।

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि उपरोक्त दोनों मंत्र एक के बाद एक आते हैं फिर भी एक में सप्त धाम कहा है तो अगले में सप्त ऐश्वर्य। अतः ये सप्त ऐश्वर्य पूर्ण वर्णित सप्त कारण तत्व ही हैं। इसी प्रकार कहा है:

"सप्तमातृभिः सिन्धुभिः" ऋ० १।३४।८

सात सूक्ष्म तत्वों, जो नदियों की तरह निरन्तर बहते हैं, से उत्पन्न होने वाले सूर्य चन्द्रादि लोक इत्यादि। अतः यह सप्त लोक रहस्य स्पष्ट हो गया।

अब एक तालिका दी जाती है जिसमें वैज्ञानिक तत्व वर्गीकरण और वैदिक तत्व वर्गीकरण के तुलनात्मक स्वरूप पर प्रकाश पड़ेगा।

तत्व वर्गीकरण तालिका

	पृथ्वी	जल	वायु	तेज	आकाश
महाभूत या स्थूल-भूत	ठोस रूप में मूल तत्व (ele-	द्रव रूप में मूल-तत्व व	वायु-रूप में मूल-तत्व व	ताप, विद्युत् या चुम्बकत्व (magnetism) और सूर्य किरण व उसकी सप्त-रंगी किरणें (white	सर्वव्यापी तत्व ऐण्टी-पार्टिकिल्स (anti-particles or extra-ordinary electrons

	पृथ्वी	जल	वायु	तेज	आकाश
	me-nts) व यौगिक (chemical com-pounds)	यौगिक	यौगिक	light with seven constituent coloured lights of visible spectrum)	which uniformly fill entire space.
सूक्ष्म भूत या तन्मात्रा	ठोस पदार्थों के अणु (Molecules)	द्रवों के अणु	वायु (gases) के अणु	की अदृश्य किरणें इन्फ्रारेड, अल्ट्रावायलेट ऐक्स रेज, रेडियो लहरें (waves) इत्यादि तथा अल्फा रेज, बीटा रेज, गामा रेज (rays associated with particle motion or wave motion)	फ्रैञ्च वैज्ञानिक लुईस डी ब्रोली द्वारा बताई गयी पाइलट लहर जो परमाणु के अन्दर इलेक्ट्रोन की गति को संचालित करती है। Louis De Brolie's pilot wave which guides motion of electrons inside Bohr's atom.

परमाणु बनावटः—अब हम ऋग्वेद में वर्णित परमाणु बनावट पर प्रकाश डालेंगे।

प्रश्नः

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः॥ १।२२।१६

(यतः) जिस कारण तत्व से (विष्णुः) व्यापक परमात्मा ने (पृथिव्याः सप्त धामभिः) पृथ्वी तत्व (solid state) से लेकर सातों धाम=सृष्टि के रहने के स्थान अर्थात् पूर्वोक्त सप्त सूक्ष्म तत्वों के अणु (विचक्रमे) विविध रूपों में रचे। विदित है कि अणु (molecules) विविध हैं। (अतः) उस कारण तत्व का (नः) हमें (देवाः) विद्वान् लोग, मंत्र द्रष्टा ऋषि (अवन्तु) ज्ञान करावें।

जिस कारण तत्व से अणु बने हैं उसे परमाणु कहते हैं अतः यहां परमाणु (atom) की बनावट के ज्ञान की जिज्ञासा की है। सातों तत्वों से सभी तत्वों के अणु नहीं होते किन्तु प्रश्न करते समय सभी सात की गणना करना औपचारिक है।

उत्तरः—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढ्लमस्य पांसुरे॥ १।२२।१७

(विष्णुः) व्यापक परमात्मा ने (इदम्) इस (पदम्) ज्ञातव्य कारण तत्व परमाणु (atom) को (त्रैधा निदधे) तीन प्रकार के कारण तत्वों से (विचक्रमे) विविध रूपों में बनाया। विदित हो कि परमाणु (atoms) विविध हैं और तीन तत्वों इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन से बने हैं (अस्य) इस (समूढ्म्) भली प्रकार जानने योग्य सूक्ष्म तत्व परमाणुओं को परमात्मा ने रज कणों की भांति आकाश (space) में स्थापित (the atoms were spread all over the space like particles of dust) किया। त्रैधा का अर्थ तीन

प्रकार न लेकर तीन तत्व लिया गया। इसका आधार अगला मंत्र स्वयं है वाह्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन्॥ १।२२।१८

प्रथम दो मंत्रों में क्रमशः प्रश्नोत्तर के पश्चात् अब इस मंत्र में उपसंहार है। मंत्र में दो महत्वपूर्ण दार्शनिक एवं वैज्ञानिक सत्यों पर प्रकाश डाला गया है। मंत्र व्याख्या के उपरान्त इन दो तथ्यों पर प्रकाश डालेंगे। (अदाभ्यः) कभी नष्ट न होने वाले अविनाशी (गोपाः) रक्षा करने वाले (विष्णुः) व्यापक निराकार परमात्मा ने (धर्माणि धारयन्) तत्वों के धर्म=गुणों के अनुसार ही ज्ञानपूर्वक (अतः) इस कारण तत्व परमाणु (atom) को (त्रीणि पदा) तीन मूल कारण ज्ञातव्य तत्वों इलेक्ट्रोन, प्रोट्रोन, न्यूट्रोन से (विचक्रमे) विविध रूपों में निर्माण किया।

मंत्रों में परमात्मा का विष्णु=व्यापक होने वाले गुण से वर्णन किया है क्योंकि सृष्टि निर्माण कार्य सार्वदेशीय है। अदाभ्यः= अविनाशी कहकर यह संकेत किया है कि उस परमात्मा का कार्य-सृष्टि भी अविनाशी है। यह उसके द्वारा (गोपाः) रक्षित है। इस कारण प्रवाह से अनादि है। सृष्टि के उपरान्त प्रलय और प्रलय के उपरान्त सृष्टि, यही क्रम है। गीता में भी इसी सत्य को इस प्रकार कहा है—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके।

सम्पूर्ण भूत समुदाय दिन=सृष्टि काल में अव्यक्त=शून्य नहीं, किन्तु सत्तावान् अदृश्य सूक्ष्म तत्व से प्रकट होता है और रात्रिकाल=प्रलय काल में (तत्रैव) **उस ही** अव्यक्त में विलीन होता है। यहां **उस ही** पद महत्वपूर्ण है अर्थ हुआ कि उसी मूल अन्ततम

(ultimate patent) अव्यक्त में छिप जाता है जिससे कि बना था। यहां प्रकृति तत्व का अनादि अन्त रहित होना निश्चयात्मक शब्दों में कहा गया है। यही है विज्ञान के अनुसार (law of conservation of energy) का सिद्धान्त। शून्य से कुछ बन नहीं सकता, कुछ बना नहीं इसीलिये वेद कहता है; "अतो धर्माणि धारयन्" अर्थात् परमात्मा ने शून्य से सृष्टि नहीं की, न अपने स्वरूप से की है (जैसा वेदान्ती कहते हैं) किन्तु मूल तत्वों के गुण स्वभाव के अनुसार उनके ज्ञान पूर्वक मेल द्वारा सृष्टि रचना की है। कारण से कार्य तत्व बनाया है। यहाँ मैंने कारण तत्व का बार २ प्रयोग किया है पाठक वृन्दों को विदित हो कि ३ तत्व परमाणु का कारण हैं और परमाणु अणु का कारण है, अणु (elements) महाभूतों के कारण हैं ऐसा समझना चाहिये। जो वस्तु निर्मित होती है उसे कार्य कहते हैं जिनसे निर्मित होती है उन्हें कारण कहते हैं। विपरीत क्रम से परमाणु तीन उपरोक्त तत्वों का कार्य है अणु परमाणुओं के कार्य हैं और महाभूत अणुओं के कार्य हैं।

वेदों में विमान एवं राकेट विद्या

वेदों के अध्ययन से पता लगता है कि वैदिक काल में विमान और राकेट प्रयोग में लाये जाते थे। ये विमान या राकेट वायु (gases) के ईंधन (fuel) से चलते थे। ऋग्वेद प्रथम मंडल के द्वितीय ऋषि ने ही जल से विद्युत् की उत्पत्ति का निर्देश दिया है। यथा:

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्व शम्भुषमापश्च विश्व भेषजीः॥

ऋ० १।२४।२०

(सोमः) शान्तिदायक प्रभु ने (मे) मुझे (अब्रवीत्) बताया है कि

(अप्सु अन्तः) जलों में (विश्वानि भेषजा) सब प्रकार के रोगों को दूर करने की सामर्थ्य है अर्थात् एक तो जल का दूषित होना रोग का कारण होता है और दूसरे जल चिकित्सा द्वारा रोगों का निदान भी हो सकता है।

जल में (अग्नि च) विद्युत्) भी है (विश्व शम्भुषम्) जो समस्त विश्व को सुख शान्ति प्रदान कर सकती है। कितना स्पष्ट संकेत है फिर भी वेदों के अज्ञान और दूषित भाष्यों के कारण भारत, महाभारत के उपरान्त इनका लाभ न उठा सका।

इसी प्रथम मंडल में आगे ऐसा यान बनाने का निर्देश दिया है जो जल पर, थल पर और आकाश मार्ग में चल सके। यथा :

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूना रथः। धिया युयुज्र इन्दवः॥
४६।८

(वां) तुम दोनों गुरु शिष्य (दिवः तीर्थे) आकाश के पार अर्थात् एक लोक से दूसरे लोक या पृथ्वी पर एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के लिये और (सिन्धुना तीर्थे) समुद्र के पार जाने के लिये (पृथु अरित्रं) बड़ा भारी यान बनाओ जो (रथः) थल पर भी रथ की भांति चल सके। उसमें (इन्दवः) चक्र अर्थात् यंत्र (धिया युयुज्रे) बुद्धि पूर्वक यांत्रिक कुशलता से लगाये गये हों। जो यान आकाशगामी हो वही समुद्र और थल पर भी चल सके ऐसा अत्यन्त उच्चकोटि की यांत्रिक विद्या से ही सम्भव है।

वाहन अथवा यान में प्रेरक बल (tractive force) वायु (gases) का हो, इस विषय में वैदिक निर्देश देखिये :

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा॥
ऋ० १।३४।२

(मधुवाहने रथे) सुखप्रद वाहन या यान में (त्रयः पवयः) तीन

यंत्र हों जैसे बैटरी, पम्प, डायनमा इत्यादि उसमें (विश्व इत्) सब ही कार्य का संचालन (सोमस्य) वायु के द्वारा=द्रवों से उत्पन्न गैसों के (वेनाम् अनु) प्रेरक बल (driving force) से होता है ऐसा (विदु:) विद्वान् लोग जानते हैं। उसमें (आरभे) आलम्बन के लिये (for support) (त्रय: स्कम्भास) तीन दंड (rods) या तीन चुम्बकीय छड़ (electro-magnets) लगाये गये हों। हे (अश्विना) दोनों विद्वान् विद्युत् यंत्री और मशीन यंत्री (electrical engineer and mechanical engineer) या दो चालक (pilots) या दोनों गुरु शिष्य इस वाहन द्वारा (त्रि दिवा त्रि नक्तं याथ:) तीन दिन तीन रात भी लगातार चल सकते हों। अथवा तीन दिन तीन रात में (सोमस्य वेनाम् अनु) चन्द्रलोक के गुरुत्वाकर्षण को पार कर उसकी भूमि पर पहुँच सकते हों।

विदित हो कि वायुयान पेट्रोल की गैस से तथा राकेट भी गैस से चलता है।

(अलकोहल ८०० पौंड और द्रव ओषजन ११०० पौंड के मिश्रण दो टंकी में तथा दो छोटी टंकी में ३७० पौंड हाइड्रोजन परआक्साइड और ३० पौंड पोटेसियम परमेंगनेट। जलने पर (on combustion) द्रव ओषजन और अलकोहल वायुरूप होकर जेट से निकलते हैं इस लगातार मात्रा × वेग (momentum) की प्रतिक्रिया (reaction) के रूप में प्रेरक बल राकेट को चलाता है) मंत्र में वायुओं (gases) द्वारा प्रेरक बल (driving force) की उत्पत्ति बतायी गयी है।

अगले मंत्र में इसी यान को स्वचालित एवं वायु वेग तथा मन की गति से भी चलने वाला कहा है तथा उसे तीनों लोकों में गमनशील बताया है। यथा :

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवे दिवे परि त्रिधातु पृथ्वीमशायतम्।

त्रिस्त्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छताम् ।
१।३४।७

हे (अश्विना) विद्वान् पुरुषो (यजता) यज्ञ करने वाले, परोपकार के लिये खोज में व्यस्त वैज्ञानिकों (दिवे दिवे) प्रतिदिन (त्रिधातु) तीन दोषों (वात पित्त कफ) को अच्छी तरह शमन करके (त्रिः पृथ्वीम् अशायतम्) तीन दिन रात पृथ्वी पर शयन करो अर्थात् एक विशेष प्रकार के कमरे (chamber) में निवास करो। विदित हो कि अंतरिक्ष यात्रा के पूर्व यात्रियों को स्वास्थ्य की परीक्षा करानी पड़ती है और एक विशेष कमरे में (chamber) ३, ४ दिन रहना पड़ता है।

हे (नासत्या) कभी असत्य न बोलने वाले जैसे (वातः इव) पृथ्वी पर वायु बेरोक टोक एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती है वैसे ही तुम भी (परावतः) पृथ्वी पर के दूर दूर देशों को (रथ्या) यान पर बे रोक टोक जावो। जैसे (आत्मा इव) आत्मा सूक्ष्म होने से एक देह से दूसरी देह में बे रोक टोक जाती है वैसे ही तुम भी इस (स्वसराणि) स्वचालित (self driven, automatic) राकेट पर (त्रिस्त्रः गच्छताम्) तीनो लोकों (उपग्रह, ग्रह और सूर्य मंडल के बाहर के लोकों) को जाओ।

अब पाठक गण ध्यानपूर्वक मंत्र में दी हुई तुलना को मनन कीजिए। प्रथम तुलना वायु से दी गयी है। वायु वायुमंडल (जो पृथ्वी को घेरे है) के बाहर नहीं जा सकती, अतः प्रथम प्रकार का यान=वायुयान या विमान पृथ्वी के विभिन्न स्थानों के भ्रमण के कार्य आता है। द्वितीय तुलना में यान की समता आत्मा से बताई है। आत्मा या मन की गति को कोई बाधा नहीं है। आत्मा एक देह को त्याग कर दूसरी देह धारण करने किसी भी लोक में जा सकती है ऐसे ही यह द्वितीय यान एक लोक से दूसरे लोक को जाने के लिये

काम में आता है। यह स्वचालित और अत्यन्त तीव्रगामी है।

राकेट के चन्द्र लोक इत्यादि पर पहुँचने पर स्वचालित संकेत (automatic signals) भेजने के तथा स्वचालित चित्र (automatic photograph) लेने के व पृथ्वी पर के स्थान (station) से किरणों द्वारा राकेट को नियंत्रण (Control) में रखने की जो व्यवस्था की जाती है उसके विषय में वेद मंत्र में आये विवरण को देखिये :

याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्त्रिया उदाजतं ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥
ऋ० १।११२।१२

व्याख्या:—

(याभि) जिन (ऊतिभिः) साधनों से (रसाम्) पृथ्वी को तथा नदियों इत्यादि को (उद्नः क्षोदसा) जल प्रवाह से (पिपिन्वथुः) मेघ के समान पूर्ण कर देते हो और (याभिः) जिन साधनों या ज्ञान से (अनश्वम् रथम्) बिना घोड़े का रथ=स्वचालित (self driven) (आ अवतम्) यंत्रादि से (जिषे) सफलतापूर्वक चलाते हो। हे (त्रिशोकः) अग्नि, विद्युत् और प्रकाश के तत्वज्ञ या विद्युत्, यांत्रिक और रेडियो यंत्री (electrical, mechanical & telecommunication engineer) या गणित, रसायनशास्त्र और भौतिकशास्त्र के तत्वज्ञ (याभिः) जिन साधनों से (उस्त्रिया) ऊपर जाने वाली किरणें, विद्युत् धाराएें (radio waves, radar) द्वारा (उद् आजतम) ऊपर उठाने में समर्थ होते हैं (ताभिः नः सु आगतम्) उन सब साधनों द्वारा हमें प्राप्त होओ।

मंत्र में स्पष्ट रूप से तीन तथ्यों पर प्रकाश डाला है। प्रथम यह कि जल वर्षा, जल प्रवाह पर मानव-अधिकार होना। द्वितीय स्वचालित यानों के निर्माण की सम्भावना। तृतीय दूरस्थ स्थान

व अन्य लोकों तक विद्युत् धाराओं (radio waves) द्वारा सम्पर्क स्थापित करने वाले यंत्रों के निर्माण का संकेत।

अन्त में एक मंत्र पर विचार करेंगे जिसमें ऐसा सुस्पष्ट वर्णन है कि चलते हुए विमान की कल्पना होने लगती है।

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः।
दिवि स्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन्॥
ऋ० १०।१६८।१

(वातस्य) वायु द्वारा संचालित (gas driven) (रथस्य) विमान के (महिमानं) सामर्थ्य को देखो कि (अस्य घोषः स्तनयन् एति) इसका शब्द कितनी जोर की ध्वनि फैलाता आता है जैसे (रुजन) पदार्थों को तोड़ता-फोड़ता आ रहा हो। वह विमान (दिवि स्पृक) आकाश को छूता हुआ सा ऊँचाई पर (पृथिव्याः रेणुम् आयन्) धूल के कण की भाँति गैस के कणों को बिखेर (अरुणानि कृण्वन् याति) लाल २ वर्ण उत्पन्न करता हुआ आता है। इससे स्पष्ट और क्या वर्णन होगा!

वेदों में सृष्टि उत्पत्ति (Vedic Cosmology)

वैज्ञानिकों के अनुसार सर्गारम्भ में सूक्ष्म रूप शक्ति (nuclear energy) का एक महान् पिण्ड था जो गतिशील (rotating on its axis) हुआ। कालान्तर में यह वायुरूप (molecular fonm) में परिणित हुआ और घर्षण से जल [ignetious mass] में परिणित हो गया। इसी प्रारम्भिक जलते हुए महापिण्ड=महासूर्य [ignetious nobula| से सूर्य की तरह अनेक लोक उत्पन्न हुए जो अपनी अक्ष पर भ्रमण करने के अतिरिक्त महासूर्य [nebula] की अक्ष [axis] के चारों ओर घूमने लगे। तदन्तर उसी प्रकार सूर्य से सौर्यमंडल के ग्रहों की उत्पत्ति हुई।

मैं वेदों में अभी क्रमबद्ध सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन नहीं पा सका जो सामग्री यत्र तत्र मिली है उसे प्रस्तुत करूँगा । प्रथम इस प्रारम्भिक नेबुला=महासूर्य मंडल के विषय में ऋग्वेद की सामग्री देखिये । यथा :

पश्च मन्यद्भवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गुरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्मः ॥
१०।१४६।३

पदअन्वय व व्याख्या :—

उस [अमर्त्यस्य] अविनाशी [भुवनस्य] जगत् के अधिष्ठाता के [भूना] सामर्थ्य से ही उसके [पश्चात्] बाद [इदं अन्यत्] यह उससे सर्वथा भिन्न जड़ जगत् [अत्रम्] जड़ तत्वों के [यज] संयोग से [अभवत्] उत्पन्न हुआ । [अङ्ग] हे अङ्गरूप चेतन [सवितुः] जगत् उत्पादक परमेश्वर से ही [सुपर्ण=सु-पर्ण] अच्छी प्रकार गतिशील=नियमानुकूल गति करता [moving according to definite laws] हुआ [गुरुत्मान्] महान् पिण्ड=महासूर्य [पूर्वः जातः] सर्व प्रथम उत्पन्न हुआ । [सः] वह [उ] निश्चय ही अथवा प्रसिद्ध है कि [अस्य धर्मः अनु] ईश्वर की महानता और सामर्थ्य के अनुरूप था अर्थात् अत्यन्त महान् था ।

अब इसी मंडल के सूक्त १२१ के एक मंत्र पर विचार करें ।

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तरग्निम ।
[आपः] मूल कारण प्रकृति सत् रज् तम् । [बृहतीः आपः] मूल प्रकृति से उद्भूत प्रारम्भिक कार्य रूप तत्व [produets of ultimate particles of matter called extended form of matter e. g. electrons proton, positrons, neutrinos, mesons etc.] [अग्नि जनयन्ति] सर्व प्रकाशक महान् हिरण्यमय अग्नि पिण्ड=नेबुला को प्रकट करते हुए, जिसे वह [ह] निश्चय ही

[गर्भं दधाना] अपनी अव्यक्त दशा में गर्भ में शिशु की नाईं छिपाये रहती है, [यत् विश्वम् जनयन्ति आयन्] इस विश्व की रचना करती है। आपः शब्द वेदों में जल के अतिरिक्त परमात्मा, आप्त पुरुष, मूल प्रकृति तत्व और प्राण के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

आगे फिर एक ऐसे ही प्रकरण को देखिये। यथा :

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन।
मायाम् तु यज्ञियानामहेमापो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥
ऋ० १०।८८।६

[नक्तम् अग्निः] अव्यक्त शक्ति रूप मूल तत्व (latent ultimate matter in energy form) (भुवः मूर्धः भवति) उत्पत्तिवान् सृष्टि का सिर स्थान होती है अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति में सर्वप्रथम सीढ़ी है। (ततः सूर्यः जायते प्रातः उत् यन) और उसी प्रारम्भिक शक्ति से प्रातः आदि सृष्टि काल में महासूर्य उत्पन्न होता है।

(यत आपः चरति) जो वह प्रकृति परमाणुओं में व्याप्त हो (तूर्णिः) अति वेगवान हो (प्रजानन्) क्रम से पदार्थों एवं लोकों को रचती है उसे हम (यज्ञियानाम्) तत्वमीमांसा करने वाले (मायाम् अहेम) विश्वसृष्टा की माया कहते हैं।

सृष्टि उत्पत्ति के समय की प्रारम्भिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए वेद मंत्रों में कई स्थलों पर परमात्मा को कई विशेषणों से संबोधित किया है। यथा :

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः ····· । ऋ० १।३१।२

हे (अग्नि) ज्ञानस्वरूप परमात्मन् तू अङ्गिरस्तमः से पूर्व विद्यमान था। यहां (अङ्गिर–अस्–तमः=अंगारे के सदृश्य तम नाशक=महासूर्य मंडल) महासूर्यमंडल के पूर्व विद्यमान् होने का संकेत है अन्यथा मंत्र भावहीन हो जाता है। इसी प्रकार और देखिये उसी सूक्त का तीसरा मंत्र :

त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन् आविर्भव सूक्रतूया विवस्वते ॥

मातरिश्वन् से पूर्व होने का क्या तात्पर्य है यदि मातरिश्वन् सृष्टि की कोई स्थिति नहीं है तो। यह मातरिश्वन् क्या है ? विदित है कि अग्निमय महान पिण्ड=जलते हुए नेबुला से पूर्व अपनी अक्ष पर घूमता हुआ महान वायुरूप पिण्ड था। इस संदर्भ से ही मंत्र भावपूर्ण होता है। अब मंत्र का भाव हुआ [अग्ने] हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् तू [मातरिश्वन्] आकाश में गतिशील वायुरूप पदार्थ [matter] के महान् पिण्ड के [प्रथम:] पूर्व विद्यमान था। तूने [सूक्रतूया] संकल्प से ही मातरिश्वन् से [विवस्वते, विवस्वत= वि-वस्-यत्] विविध लोकों को धारण करने वाले, जन्म देने वाले महा सूर्य मंडल को [आविर्भव] उत्पन्न किया।

अब पाठकगण आर्यसमाजियों के प्रसिद्ध दैनिक प्रार्थना मंत्र का तात्पर्य सुगमता से समझ सकेंगे। मंत्र है :

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत।

ऋ० १०।१२१।१

विश्वविख्यात् जर्मन विद्वान् प्रोफेसर मैक्समूलर ने हिरण्य का अर्थ किया सोना, किन्तु अर्थ में कोई तुक नहीं बैठती। देखिये— "हे समस्त प्राणी मात्र की उत्पत्ति करने वाले जगत् के अद्वितीय स्वामी तू सोने की उत्पत्ति के पूर्व भी था" कोई तुक नहीं बैठती, भाष्य लालबुझक्कड़ी हो गया।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है "ज्यतिर्वै हिरण्यम्" का० ६। अ० ७

प्रकाश को हिरण्य कहते हैं। जैसा कि पूर्व मंत्रों की व्याख्या में बताया जा चुका है यहाँ अब भावपूर्ण [meaningful] अर्थ हुआ" सृष्टि का अद्वितीय नायक प्रभु उस महान् जलते हुए ज्योति पिण्ड [ignitious nebula], जिसे वह अव्यक्त दशा में अपने गर्भ में छपाये रहता है, उसकी उत्पत्ति के पूर्व भी विद्यमान था। वही उस

महान् पिण्ड से उत्पन्न सूर्य चन्द्रादि को धारण करता है। अब सृष्टि उत्पत्ति विषयक विवरण यजुर्वेद में देखिये। यथा :

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥ अ० ३१

(ततः) उस अव्यक्त मूल प्रकृति से (विराड्=वि उपसर्ग+राज् दीप्तौ धातु) विविध किरण समूह रूप महान् ज्योति पिण्ड (immense store of energy in the form of rays) अजायत=उत्पन्न हुआ। (विराजः अधि पूरुषः) इस निर्माण कार्य का अधिष्ठाता पूरुषः=सर्व व्यापक परमात्मा था। इसी विराड् को पूर्वोक्त मंत्रों में हिरण्य नक्तमग्नि, बृहती आपः की संज्ञा दी है। इसे ही ब्रह्माण्ड=ब्रह्म+अंड (divine egg) प्रारम्भिक नेबुला कहते हैं। गीता में इसे ब्रह्मा की संज्ञा दी है।

(सः जातः) इस नेबुला की उत्पत्ति के पश्चात् उससे (अति, अरिच्यत) एक पिण्ड अति दूर फिक कर पृथक् हो गया (पश्चाद्) बाद में वही (भूमिम्) मूल पिण्ड से प्राप्त गति को लेकर मूल पिण्ड की परिक्रमा करता हुआ प्रकाशवान् लोक=तारा बन गया। (अथः) इसी क्रम से तारा=सूर्य से (पुरः) वे लोक जिन पर प्रजा वास करती है उत्पन्न हुए।

अब सृष्टि उत्पत्ति पर उपनिषदों में, जो वेदों के ऋषियों द्वारा किये भाष्य रूप हैं, आये विवरण को प्रस्तुत करना अत्यन्त समयानुकूल होगा। प्रथम स्थल है मुण्डक उपनिषद् का। यथा: "एतस्मात् जायते………। खम् वायुः ज्योतिः आपः पृथ्वी विश्वस्य धारणी।" २। खंड १। ३ मंत्र में दिया हुआ क्रम महत्वपूर्ण है यदि सूक्ष्मता से क्रम होता तो आकाश के पश्चात् तेज और तेज के पश्चात् वायु की उत्पत्ति बताई जाती, किन्तु ऐसा नहीं है। अतएव इस क्रम में सृष्टि उत्पत्ति का रहस्य है। तैत्तरीयोपनिषद् में भी यही क्रम है यथा:

तस्मात् वै एतस्मात् आत्मानम् आकाशः सम्भूतः।
आकाशात् वायुः। वायोः अग्निः। अग्निः आपः। अद्भ्यः पृथ्वी।
पृथिव्याः ओषधयः। ओषधीभ्यः अन्नम्। अन्नात् रेतः रेतसः
पुरुषः.. ..... ।

सर्व प्रथम अव्यक्त प्रकृति से (आकाशः सम्भूतः) अत्यन्त सूक्ष्म सर्व व्यापी तत्व (energy in nuclear form) उत्पन्न किया। आकाश से शून्य खोल=अवकाश ग्रहण करना उचित नहीं। इसमें स्वामी दयानन्द भाष्य महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। मूल भाष्य है:

"तस्मात् सत्यादि स्वरूप परमात्मन् आकाशो वायोः कारणं शब्द गुणं तत्वं सत्तात्मकम् उत्पन्नं न च अत्र अभाव मात्र शून्यम् आकाश पद वाच्यं।"

सत्यादि स्वरूप परमात्मा ने आकाश तत्व जो वायु का कारण है और जिसका लक्षण शब्द ले जाना (wave motion) है ऐसे एक सत्तात्मक तत्व को उत्पन्न किया न कि शून्य रूप व्यापक अवकाश (space) खोल को। (आकाशात् वायु) फिर सूक्ष्म तत्व से वायु रूप (gaseous state) हुआ। (वायोः अग्निः) इस वायु रूप पिण्ड के एक अक्ष पर घूमने से परमाणु घर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई। तब घूमता हुआ महान् पिण्ड जल उठा और अग्नि पिण्ड (ignitious nebula) हो गया। तत्पश्चात् (अग्नेः आपः) मूल पिण्ड से पृथक् हुआ जलता हुआ पदार्थ ठण्डा होकर द्रव रूप (molten state) में आ गया। यही ठण्डा होकर पृथ्वी की तरह लोक बन गया। फिर पृथ्वी पर वनस्पति उत्पन्न हुई। इस वनस्पति से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से मानव शरीर का निर्माण हुआ।

तैत्तरीयोपनिषद् के ज्योतिष सम्बंधी मंत्र पर विचार करने से विदित होगा कि उपरोक्त व्याख्या पूर्ण रूपेण सही है। यथा शिक्षा अध्याय। ३

(अथ अधिज्योतिषम्) अब ज्योतिष संबन्धी विचार यह है अग्निः पूर्व रूपम् आदित्यः उत्तर रूपम आपः सन्धि वैद्युतः सन्धानम्

अग्नि पूर्व अर्थात् पहला रूप है सूर्य बाद का रूप है आपः=द्रव पदार्थ (molten metter) संधि=बीच का रूप है और विद्युत= तेज संधि कर्ता है।

भावः—घूमता हुआ महान् अग्नि पिण्ड रूप नेबुला पहले का रूप है तदुपरान्त कुछ पदार्थ पिघली हुई स्थिति में होता है जो केन्द्रीय अक्ष से दूरी पर होता है। इसी का कुछ भाग मुख्य पिण्ड से छिटककर पृथक् होता है और स्वयं जलते हुए पिण्ड रूप=सूर्य बनकर मुख्य पिण्ड के चारों ओर दीर्घाकार (elliptic) मार्ग में भ्रमण करता है। तेज शक्ति=आकर्षण शक्ति (centrifugel force) संधिकर्ता अर्थात् इस उत्पन्न सूर्य लोक की स्थिति का कारण है। इसी क्रम से नेबुला से अनेकों सूर्य और फिर सूर्य से ग्रहों की उत्पत्ति होती है। उपरोक्त मंत्र पर टिप्पणी लिखते हुए महर्षि दयानंद लिखते हैं कि इस मंत्र में गूढ़ और अति महत्वपूर्ण विद्या है।

इस अध्याय के अन्त में यह लिखना आवश्यक है कि इस सृष्टि उत्पत्ति विषय पर महान् विद्वान् पंडित भगवद्दत्त शर्मा ने एक पुस्तक लिखी है। किन्तु मुझे वह पुस्तक प्राप्त नहीं हो सकी। अतः लेख पूर्ण रूप से स्वतन्त्र ही है। तथापि मैं कह नहीं सकता कि पाठक वृन्दों को कहां तक रुचिकर प्रतीत होगा।

समाप्त

आर्य समाज के लोकोपकारी कार्य पर सम्मतियों के अंश

नवीन व्यक्तियों को आर्य समाज में लाने के लिए, आर्य समाज के प्रचार एवं प्रसार के लिए यह पुस्तक अत्यधिक उपादेय रहेगी। प्रत्येक आर्य इस पुस्तक को पढ़कर अपने उज्ज्वल अतीत पर गौरव करेगा और भविष्य को मार्ग दर्शन प्राप्त करेगा, ऐसी आशा है।

—श्री पं० शिवकुमार शास्त्री संसद सदस्य

—यह आर्य समाज की महत्ता और उसके विशिष्ट कार्यों का दिग्दर्शन कराने में निश्चय ही बड़ा उपयोगी साधन सिद्ध होगा।

श्री रामगोपाल शालवाले संसद सदस्य
मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली।

—हर आर्य एक ही दृष्टि में अपने अतीत का सिंहावलोकन करना चाहे तो इसे अवश्य पढ़ें। एक ही दृष्टि में आर्य समाज सामने आ जाता है भाषा सरस एवं सरल है। क्रम हृदयग्राही, थोड़े में बहुत, गागर में सागर वालीबात, यह युवकों के लिए पथ-दीप का कार्य करेगी, ऐसी आशा है। —आचार्य कृष्ण महोपदेशक, दिल्ली

—इसके अनेक उद्देश्यों में आर्य समाज के पूर्व की दशा, स्थापना के बाद समाज द्वारा किए हुए विश्वोपकारी कार्य एवं भविष्य में उसका कर्त्तव्य आदि महत्व पूर्ण विषयों पर माननीय सामग्री है। —श्री प्रतापसिंह शूर जी बल्लभदास,

प्रधान सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, दिल्ली

—नवीन रक्त को आकर्षित करने का यह महत्त्वपूर्ण साधन है।

—श्री विश्वम्भरप्रसाद शर्मा प्रधान आर्यप्रतिनिधिसभा म० प्र०

—आर्य समाज ने अपने जीवन के प्रारम्भ काल से जो कार्य किया है वह भारत के ही नहीं अपितु संसार के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। इसके लेखन के प्रयास की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ। —श्री आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री,

अध्यक्ष अनुसंधान विभाग, सार्वदेशिक आय प्रतिनिधिसभा, दिल्ली

मूल्य ७५ पैसे प्राप्ति स्थान—भारतवर्षीय वैदिक सिद्धांत परिषद्
अचल मार्ग अलीगढ़।

इह लोक और परलोक का पथ प्रदर्शक

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण का साधक

भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद् का मुख पत्र

साप्ताहिक— राष्ट्रपुरुष

तन, मन और आत्मा को उन्नत करने वाले वेदकथा, लघुकथा कहानी कविता, एकांकी, विवेचनात्मक लेखों से भरपूर, स्त्रियों और बालोपयोगी सामग्री से सुसज्जित, सचित्र:—

प्रतिमास एक विशेषांक की व्यवस्था, वार्षिक शुल्क ६) रु० मात्र

द्रष्टव्य:—

१०१) रुपये एक बार में देने पर दानी का चित्र एक पुस्तक पर सर्वदा प्रकाशित होता रहेगा।

भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद्

राष्ट्रपुरुष कार्यालय, अचल मार्ग, अलीगढ़

धार्मिक परीक्षायें

भारतवर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद् (रजि०) की सिद्धान्त प्रवेश, सि० विशारद, सि० भूषण, सिद्धान्तालङ्कार, सि० शास्त्री तथा सिद्धान्ताचार्य परीक्षायें हिन्दी माध्यम से दिसम्बर तथा अप्रैल में समस्त भारत एवं विदेशों में होंगी। सर्व प्रथम, द्वितीय, तृतीय आनेवालों को छात्रवृत्ति दी जाती है। उत्तीर्ण होने पर सुन्दर व तिरंगा प्रमाण पत्र दिया जाता है। तथा अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का 'सत्यार्थ सुधाकर' 'सत्यार्थ मार्तण्ड' उपाधियाँ डाक द्वारा निःशुल्क प्राप्त करें। विशेष जानकारी के लिये २५ पैसे की टिकट भेजकर नियमावली मंगाइये।

भारतवर्षीय वैदिकसिद्धान्त परिषद्, सेवा-सदन, कटरा, अलीगढ़ (उ.प्र)

अज्ञान के अन्धकार को भगाइए

सीमा के प्रहरी	२)	सत्य की परख	)२०
गुरु शिष्य संवाद	१)५०	बाल शिक्षा प्रबोध	१)५५
सुमंगली	१)	भक्ष्याभक्ष्य विषय	)३०
आर्य स०केलोकोपकारी कार्य	)७५	वैदेही-विछोह	१)५०
उन्नति के पथ पर	)५०	बहादुर बावनी	)५०
आर्य स० के बारह रत्न	)५०	सत्यार्थ प्रकाश मूल्यांकन	)३५
विचार वीथी	)७५	सच्चा मित्र	)०४
आर्य वीर गर्जना	)४४	गो करुणानिधि	)१५
धर्मशिक्षा	)२५	स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाश	)१०
नैतिक शिक्षा	)२५	आर्योद्देश्य रत्नमाला	)१०
हमारी कहानी	)२०	पञ्च महायज्ञ विधि	)२५
साधू की कहानी	)०३	संध्या गायन	)०५
उद्धार पाने के लिए	)०३	दैनिक यज्ञ प्रबोध	)१०
पुरुष सूक्तम्	)४०	वैदिक प्रश्नोत्तरी	)०४
प्यारा ऋषि	)७५	नित्यकर्म विधि	)४०
ब्रह्मचर्य विद्या	)५०	प्यारा ऋषि	)५०
भारतकीअवनतिके ७ कारण	)३०	बाल वेदामृत	)७५
Our National Hero	)05	पतन के कारण	)४०
जादूगर की जादूगरी	)१५	धरती के देवता	)१५
आदर्श नारी सुशीला	)३०	संध्या सुमन	)२०
गजराज गीताञ्जली	)१५	प्रार्थना प्रसून	)३०
भारत दर्शन	)१५	प्रभु दर्शन	२)५०

भारतवर्षीय वैदिक सिद्धांत परिषद् अचलमार्ग, अलीगढ़